International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 18-04-2026, Accepted: 19-05-2026, Published: 03-06-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 151-153

भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' में पाप, पुण्य और प्रेम की अवधारणा का पुनर्पाठ

दिनेश[1], डॉ. कल्पना[2]
[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, गुरू जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारत
[2] शोध निर्देशक, सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गुरू जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.2.12155

सारांश
मानव जीवन का उद्देश्य कोई निर्धारित नहीं कर पाया और न ही यह स्पष्ट हो पाया है कि मानव जीवित क्यों और कैसे है और न केवल जीवित अपितु संसार में उपस्थित अन्य सभी प्राणियों से अधिक उन्नत, अधिक संवेदनशील, अधिक सभ्य। जीव वैज्ञानिकों के अनुसार ये सब करोड़ों वर्षो के संघर्ष और खुद को बेहतर करते जाने का परिणाम है, ईश्वर को सर्वेसर्वा मानने वालों के अनुसार ये परमपिता की कृपा है, कुछ दार्शनिकों के अनुसार यह बस एक सुखद संयोग है, इन सब मत मतान्तरों के बीच एक मत साहित्यकार रखते आये हैं वो है; प्रेम। मानव की उन्नति, जीवन का कारण और उद्देश्य प्रेम ही है। मानव की संवेदनशीलता और अपने पराये की भावना से रहित होकर प्राणी मात्र से प्रेम कर पाने की क्षमता ही मानव को अन्य सब जीवों से अलग करती है। प्रेम की व्याख्या विद्वान अपने अपने अनुसार करते रहते हैं। प्रेम की विराटता स्वयं स्पष्ट है ऐसा ही एक और प्रश्न जो प्रेम के साथ साथ लगा चलता है और जीवन की यात्रा को हर कदम पर प्रभावित करता है; पाप और पुण्य।
जब मानव ने अपनी पाश्विक प्रवृत्ति को छोड़कर समाज का निर्माण किया तो उसने सबसे पहले स्वयं की पशुता पर बंधन लगाने के लिए कुछ नियम निर्धारित किये जिस से सभ्य समाज का निर्माण हो सके। आरंभिक स्तर पर प्रत्येक समाज ने अपनी भौगोलिक स्थिति के साथ सामंजस्य रखते हुए ये नियम बनाये, समय के साथ जब सभ्यताएं उन्नत हुईं मानव की भावनाएं ज्यादा जटिल होने लगी तो नए सामाजिक नियमों की आवश्यकता अनुभव हुई जिन्हें अधिक दृढ़ता से लोगों के मानस में बैठाने के लिए उन्हें अध्यात्म से जोड़ा गया और नाम दिया गया पाप और पुण्य का। एक ऐसी सामाजिक प्रणाली तैयार की गयी जो सहज ही कुछ कार्यों के करने या न करने से किसी को समाज में प्रशंसा या घृणा का पात्र बना सकती थी। इस प्रणाली के साथ भी वही अनहोनी हुई जो प्रत्येक पंथ, सम्प्रदाय और विचारधारा के साथ होती आयी है; जड़ता। ये नियम समय के साथ विकसित होने के स्थान पर रूढ़ होने लगे। मनुष्य की प्रवृत्ति बदली किन्तु नियम जड़ हो गए। मानव स्वभाव से ही प्रगतिशील है जड़ता उसे अधिक दिन नहीं सुहाती उसने इन नियमों, रूढ़ियों की नई व्याख्या तलाश करनी आरम्भ की नए संदर्भों में नए सिरे से इनका मूल्यांकन आरम्भ हुआ। भगवती चरण वर्मा जी ने भी अपने उपन्यास चित्रलेखा में इस पाप, पुण्य और प्रेम की व्याख्या अपने सिरे से आरंभ की। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वर्मा जी ने उक्त विषयों सम्बन्धी अपनी मान्यताएं इस उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत की है। चित्रलेखा के सन्दर्भ में इन विषयों का पुनर्मूल्यांकन इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया जा रहा है।

मूल शब्दः प्रेम, पाप, पुण्य, चित्रलेखा, परिस्थिति

मूल आलेख

उपन्यास का आरम्भ ऐसे प्रश्न से होता है जो चिरकाल से मनुष्य को आकर्षित और चकित करता रहा है श्वेतांक अपने गुरु रत्नाम्बर से पूछता है श्पाप क्या है'। जिसका उत्तर रत्नाम्बर स्वयं न देकर अपने शिष्यों से कहता है कि पाप की परिभाषा देना कठिन है उसे तो संसार में रहकर ही जाना जा सकता है ऐसा कहकर रत्नांबर अपने दो शिष्यों को लेकर पाटलिपुत्र जाते हैं और श्वेतांक को एक विलासी सामंत बीजगुप्त के पास तथा विशालदास को एक योगी कुमारगिरि के पास रहकर अनुभव ग्रहण कर पाप का पता लगाने को कहकर तपस्या के लिए चले जाते हैं। सम्पूर्ण कथानक बीजगुप्त, कुमारगिरि और पाटलिपुत्र की प्रसिद्ध नर्तकी चित्रलेखा के आस पास घूमता है। उपन्यास के अंत में वर्मा जी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं "संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वो करते हैं जो हमें करना पड़ता है।"[1] अपना मत स्पष्ट करने के पश्चात् वर्मा जी इस प्रश्न पर विश्लेषण का रास्ता खोलते हुए उनसे सहमत या असहमत होने का अंतिम निर्णय पाठकों पर छोड़ देते हैं। इसी रस्ते पर चलते हुए चित्रलेखा की कथा का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है, सम्पूर्ण कथा में एक भी स्थान पर ऐसा नहीं होता कि उपन्यास के प्रमुख पात्र स्थिति के वश में होकर निर्णय करते हैं निस्संदेह परस्थितियां अपनी भूमिका निभाती हैं तथापि एक भी स्थान पर पात्र कोई निर्णय लेने के लिए बाध्य नहीं है सभी पात्र अपने विवेक के आधार पर निर्णय लेते हैं न कि बाध्यता के कारण तो किस आधार पर ये निर्णय निकाला जा सकता हैं कि हम केवल वो करते हैं जो हमें करना पड़ता है। पाप और पुण्य का यह सारा तर्कजाल प्रेम की व्याख्या के इर्द गिर्द घूमता दिखाई देता है और प्रेम की खोज में निकलती है उपन्यास की नायिका चित्रलेखा। चित्रलेखा का जीवन थोपे गए प्रेम से आरम्भ होकर स्वतः उत्पन्न उस प्रेम तक पहुँचता है जहाँ एकमात्र प्रेम ही जीवन का आधार होता है।
प्रेम क्या है की यात्रा चित्रलेखा के जीवन की कहानी है। चित्रलेखा के लिए प्रथम प्रेम का आधार विवाह का बंधन था उस प्रेम का ध्येय था उस व्यक्ति को खुश रखना जिसके साथ उसे विवाह बंधन में बाँधा गया है। चित्रलेखा का अपने "पति से प्रेम उसके आत्मबलिदान की पराकाष्ठा थी और आत्मबलिदान में कितना सुख होता है, यह केवल आत्म–बलिदान करने वाला ही जानता है।"[2] पति की मृत्यु चित्रलेखा से उसके प्रेम का आधार छीन लेती जिस केंद्र को आराध्य मान कर उसने अपना जीवन उत्सर्ग किया जब वही न रहा तो चित्रलेखा चाह कर भी उसके प्रति समर्पित न रह सकी और कृष्णादित्य से प्रेम कर बैठी। यह उसका दूसरा प्रेम था किसी द्वारा थोपा गया बंधन न था अपितु उसके द्वारा लिया गया निर्णय इस दृष्टि से उसका प्रथम प्रेम जो स्वतः उत्पन्न हुआ न कि उसे करना पड़ा। इस बार प्रेमी ईश्वर

नहीं साथी हुआ। चित्रलेखा के लिए प्रेम की परिभाषा बदली उसने जाना "प्रेम भक्ति नहीं है इसलिए एक ओर से नहीं होता, प्रेम सम्बन्ध है जो दोनों ओर से होता है।"[3] कृष्णादित्य भी जब मृत्यु को प्राप्त हुआ और वक्त ने कृष्णादित्य की यादें मिटा दी तो चित्रलेखा को जीवन की निःसारता का अनुभव हुआ व उसने जाना कि प्रेम अमर नहीं है इसलिए प्रेम एक भावुकता है जो अन्य भावों की तरह मिट सकता है। चित्रलेखा ने इसके पश्चात प्रेम और व्यक्तियों से किनारा कर लिया अब तक चित्रलेखा ने एक नर्तकी से नृत्य सीख कर पाटलिपुत्र में नर्तकी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी किन्तु एक दिन बीजगुप्त को देखकर वह उसकी तरफ आकर्षित हुई उसने स्वयं को रोकने का प्रयत्न किया और बीजगुप्त के एकांत में मिलने की प्रार्थना को ये कहते हुए टाल दिया "मैं केवल समुदाय के सामने आती हूँ, व्यक्ति का मेरे जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं।"[4] परन्तु कुछ समय बाद वह खुद बीजगुप्त के पास मिलने के लिए सन्देश भेजती है, इस तरह उसके जीवन का तीसरा प्रेम आरंभ होता है किन्तु पिछले अनुभवों के कारण इस प्रेम में न तो भक्ति है न प्रेमी के व्यक्तित्व में अपना मिलन इस बार चित्रलेखा अपनी भावनाओं को पीछे छोड़ चुकी है उसे अनुभव होता है कि "स्वयं प्रेम केवल कुछ दिनों तक के सुख का आधार हो सकता है उसे स्थाई बनाने के लिए आत्मविस्मरण होना आवश्यक है।"[5] चित्रलेखा में यह परिवर्तन उसके पिछले जीवनानुभवों का परिणाम था। अब उसके लिए प्रेम मात्र आकर्षण रह गया था। इसलिए ऐसा पहली बार हुआ जब अपने प्रेमी के होते हुए चित्रलेखा कुमारगिरि की तरफ आकर्षित हुई। बीजगुप्त और चित्रलेखा प्रथम बार कुमारगिरि से संयोगवश मिलते हैं। कुमारगिरि और चित्रलेखा के बीच तर्क वितर्क होते हैं चित्रलेखा ने अपने तर्कों से कुमारगिरि को प्रभावित किया किन्तु स्वयं उसके सौंदर्य पर आकर्षित हुई। चित्रलेखा का कुमारगिरि से दूसरी बार सामना चन्द्रगुप्त की सभा में होता कुमारगिरि द्वारा अपनी तपस्या बल से सभा को कल्पना जनित ईश्वर का दर्शन कराना चित्रलेखा को मुग्ध करता है तर्क में यहाँ भी चित्रलेखा विजय होती है किन्तु कुमारगिरि का आकर्षण और बढ़ता है जिसे वह प्रेम समझने लगती है कुमारगिरि में एक उच्चता का अहम् का भाव है जो उसे आकर्षक बनाता है। चित्रलेखा इस आकर्षण के पीछे दौड़ पड़ी उसने बीजगुप्त को छोड़ कर कुमारगिरि की शरण ली किन्तु कुछ समय के बाद जब कुमारगिरि की उच्चता का भ्रम टूटता है तो वह पाती है कि उसने भारी भूल की "उसने अनुभव किया कि वह कुमारगिरि से प्रेम न कर सकती थी"।[6] उसे अपनी भूल का एहसास था जब कुमारगिरि को यह ज्ञात हुआ कि चित्रलेखा उससे प्रेम नहीं करती तब उसने चित्रलेखा को प्राप्त करने के लिए छल का सहारा लिया उसने चित्रलेखा को बताया कि बीजगुप्त का विवाह हो चुका है यह सुनकर एक बार फिर चित्रलेखा को अपना प्रेम छूटता दिखाई देता वह एक शव कि तरह स्वयं को कुमारगिरि को सौंप देती है। किंतु जब उसे पता चलता है कि बीजगुप्त अविवाहित है और उसने सबकुछ त्याग दिया है तो वह अपने प्रियतम के पास जाती है मगर अपनी भूल के कारण उसके सामने नहीं आना चाहती वह नहीं चाहती कि बीजगुप्त उस शरीर को स्पर्श करे जिसे कुमारगिरि ने छुआ था। किन्तु बीजगुप्त उसे क्षमा कर उसके इस अपराध बोध को दूर कर देता है। इस तरह चित्रलेखा एक लम्बी यात्रा कर प्रेम को जानती हुई अंततः बीजगुप्त से मिलती है और दोनों अपना सर्वस्व त्यागकर भिखारी की भांति निकल पड़ते हैं और जो चित्रलेखा कहती थी कि "जीवन में केवल प्रेम ही नहीं है और न प्रेम जीवन का एकमात्र आधार है।"[7] वही चित्रलेखा अंत में कह उठती है "हम दोनों भिखारी बन कर निकल पड़ें। प्रेम और केवल प्रेम ही हमारा आधार हो!"[8] चित्रलेखा का प्रेम भक्ति से चलकर आत्मविस्मरण में इच्छाओं से होता हुआ भोग विलास और आकर्षण जैसे निचले स्तर को छूकर बीजगुप्त का सम्बल प्राप्त कर अंततः एक सह–अस्तित्व तक पहुँचता है। वर्मा जी ने अपने प्रेम सम्बन्धी विचार बीजगुप्त के माध्यम से रखे हैं जब चित्रलेखा उससे कहती है कि प्रेम परिवर्तनशील है। तब बीजगुप्त का यह कथन वर्मा जी का प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण बताता है "प्रेम का सम्बन्ध आत्मा से है प्रकृति से नहीं, जिस वस्तु का प्रकृति से सम्बन्ध है वो वासना है, क्योंकि वासना का सम्बन्ध बाह्य से है। वासना का लक्ष्य यह शरीर है, जिस पर प्रकृति ने कृपा करके उसको सुन्दर बनाया है। प्रेम आत्मा से होता है, शरीर से नहीं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, आत्मा का नहीं। आत्मा का सम्बन्ध अमर है।"[9]

भगवती चरण वर्मा जी ने पाप पुण्य को दर्शाने हेतु दो भिन्न पात्र रखे एक जो संसार की दृष्टि में भोग विलास में डूबा हुआ है वासनाओं कि पूर्ति ही जिसके जीवन का ध्येय है ऐसा विलासी सामंत बीजगुप्त। दूसरा जो योगी है जिसने अपनी इच्छाओं को वश में कर लिया है जिसमें तपस्या का बल है जिसका सारा जीवन मोह माया से दूर है जो संसार की दृष्टि में ब्रह्म से जुड़ा हुआ है। भगवती चरण वर्मा जी के इस उपन्यास में पाप और पुण्य खुलकर सामने स्पष्ट नहीं दिखाई देते वह परिस्थितियों में दिखाई देते हैं। सामंत बीजगुप्त जो सांसारिक दृष्टि में पापी और विलास में डूबा रहने वाला व्यक्ति है उसे गुणों के आधार पर सहज ही किसी संत की संज्ञा दी जा सकती है मृत्युंजय के भवन में हुई घटना विषय में जब वह संशय ग्रस्त होता है तब श्वेतांक द्वारा सत्य को अपमान समझने के कारण इस घटना को उपेक्षा की दृष्टि से देखने पर पर बीजगुप्त का यह कथन "नहीं, यह तुम भूलते हो श्वेतांक। सत्य सत्य है; पर सत्य अप्रिय न होना चाहिए।"[10] बीजगुप्त की विनयशीलता को ही प्रदर्शित करता है। बीजगुप्त में किसी आदर्श प्रेमी के गुण मिलते हैं विवाह का प्रश्न पूछे जाने पर "स्त्री और पुरुष के चिर स्थाई सम्बन्ध को ही विवाह कहते है"[11] ऐसा कहना उसके वास्तविक प्रेमी रूप को उजागर करता है। जब बीजगुप्त अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है "यद्यपि चित्रलेखा का पाणिग्रहण मैंने शास्त्रानुसार नहीं किया है, और समाज के नियमानुसार कर भी नहीं सकता हूँ फिर भी मेरा और चित्रलेखा का सम्बन्ध पति और पत्नी का सा है।"[12] तब वह एक आदर्श गृहस्थ की तरह आचरण करता है। दूसरी तरफ सांसारिक दृष्टि में आदर्श का प्रतीक कुमारगिरि अपने गुणों के कारण किसी पापी अधम से समानता रखता है यथा कुमारगिरि का अहम् उसे अपनी पराजय स्वीकार नहीं करने देता। अपनी पराजय स्वीकार करने के स्थान पर "कुमारगिरि के नेत्र क्रोध से लाल हो गए इस सभा में कोई व्यक्ति मुझे पराजित नहीं कर सकता और न मुझको दंड देने का कोई व्यक्ति साहस ही कर सकता है।"[13] यह कथन कुमारगिरि के अहम् की पराकाष्ठा दर्शाता है। कुमारगिरि की तपस्या सहज साधना मात्र नहीं थी जिस त्याग और शांति की बातें वह सबसे कहता है जिस निर्विकार ब्रह्म में लीन होने का वह दावा करता है वह सब एक पाखंड है उसकी साधना स्वयं को ऊँचा उठाने के लिए नहीं अपितु दूसरों को नीचे गिराने के लिए थी उसकी साधना का उद्देश्य उसके त्याग का कारण इस पंक्ति में स्पष्ट हो जाता है "विजय के लिए उसने सांसारिक सुखों को तिलांजलि देदी थी। विजय के लिए ही उसने गहरी तपस्या की थी। फिर भला पराजय क्यों?"[14] कुमारगिरि अहम्, कुंठा, ईर्ष्या, काम, इन सब मनोभावों से परिपूर्ण है जिन्हें वो पाप का कारण मानता है और जिन्हे जीतने का वह दावा करता है। किन्तु परिस्थितियां उसकी वास्तविकता उजागर करती है कि वह केवल कायर की भांति विषय वासना से भाग सकता है सामना होने पर स्वयं को संयमित नहीं रख सकता।

पाप और पुण्य का निर्णय कर पाना वास्तव में अत्यंत कठिन या कहें असंभव कार्य है चूँकि परिस्थितियां और मान्यताओं की भिन्नता इसे असंभव बनाते हैं यद्यपि तटस्थ रहते हुए कुछ कार्य

ऐसे हैं जिनमें अत्यधिक विश्लेषण की आवश्यकता नहीं होती और जिन्हें प्रत्येक समाज प्रत्येक वर्ग देशकाल, वातावरण की सीमायें लांघता हुआ एकमत होता है कि यह कृत्य पाप है या पुण्य। यथा किसी स्त्री के सम्मान को छल से भंग करना अपने काम की शांति हेतु किसी भी प्रकार उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे प्राप्त कर उसके शरीर का भोग करना निस्संदेह किसी भी सभ्य समाज में पाप की श्रेणी में आता है इसके लिए बहुत ज्यादा विश्लेषण की आवश्यकता नहीं है। चर्चित उपन्यास में कुमारगिरि ऐसा ही एक कृत्य करता है "कुमारगिरि ने चित्रलखा को आलिंगन पाश में कसकर बांध लिया। उसके अधर चित्रलेखा के अधरों से मिल गए, उसने साहस किया। बल लगाकर उसने अपना मुख कुमारगिरि से हटा लिया।"[15] यह दशा एक तपस्वी की तो नहीं हो सकती यह दशा उस बहरूपिये की अवश्य हो सकती है जो तपस्वी होने का ढोंग रचता हो। इसके बाद जब बल से वह सफल नहीं हो पाया तो उसने छल का सहारा लिया। वह बीजगुप्त और यशोधरा के विवाह की झूठी बात कहता है जिससे चित्रलेखा पूरी तरह टूट जाती है कुमारगिरि चित्रलेखा की इस विक्षिप्त अवस्था का लाभ उठाकर उसके साथ एकाकार होता है। यदि इसे पाप न कहा जाये तो पाप कुछ और नहीं हो सकता तथा यदि कोई इसे यह कहना चाहे कि कुमारगिरि को वह करना पड़ा तो वह व्यक्ति मानसिक स्तर पर विचार शून्य होगा अथवा वह अपने सिद्धांत से इतना मोह रखता है कि उसे उसके अतिरिक्त अन्य कुछ दिखाई नहीं देता।

पुण्य की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है जहाँ कुछ कृत्य सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक सभी सीमाओं को लाँघकर मानवता की सहज भावभूमि पर मानव हृदय को स्पर्श करते हुए संसार की सभी सभ्यताओं में पुण्य की श्रेणी में ही गिने जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार ,"किसी के प्रेम में योगी होना और प्रकृति के निर्जन क्षेत्र में कुटी छाकर रहना एक ऐसी भावना है जो समान रूप में सब देशों के और सब वर्णों के स्त्री पुरुषों के मर्म का स्पर्श स्वभावतः करती आ रही है"।[16] चर्चित उपन्यास का पात्र बीजगुप्त जो बाह्य दृष्टि से विलासी और सामंती लगता है वही बीजगुप्त प्रेम के लिए अपना सर्वस्व त्याग देता है। वह स्वयं मृत्युंजय से श्वेतांक और यशोधरा के विवाह की बात करता है किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि मृत्युंजय केवल इसलिए उन दोनों का विवाह नहीं करना चाहते क्योंकि श्वेतांक निर्धन है इस पर बीजगुप्त कहता है "आर्य मृत्युंजय, मैं अपनी सारी संपत्ति श्वेतांक को दान कर दूंगा"।[17] केवल इसलिए कि उसका भाई समान श्वेतांक उसके प्रेम से अलग न हो जाये। क्या कोई भी समाज, कोई भी विद्वान, कोई भी सभ्यता इस कार्य को पुण्य की श्रेणी से बाहर कर सकती है।वर्मा जी अंत में निष्कर्ष देते हुए सारा दोष परिस्थितियों पर डालते हुए कहते हैं हम केवल वो करते हैं जो हमें करना पड़ता है किन्तु उनके उपन्यास के पात्र इस कथन से सहमत न होकर अपने निर्णयों के आधार पर स्वयं चुनाव करते हुए पाप या पुण्य करते दिखाई देते हैं। वो चाहे बीजगुप्त का सर्वस्व दान करना हो, चाहे कुमारगिरि का चित्रलेखा के साथ छल करना या फिर चित्रलेखा का बीजगुप्त को छोड़कर कुमारगिरि के आश्रम में जाना, प्रत्येक निर्णय पात्र का अपना चुनाव है न कि परिस्थिति की बाध्यता। यदि बीजगुप्त चाहता तो वह स्वयं यशोधरा से विवाह कर सकता था उसे कोई रोकने वाला नहीं था अपितु मृत्युंजय तो यही चाहते भी थे पर उसने अपने विवेक से त्याग और प्रेम का मार्ग चुना, यदि कुमारगिरि चाहता तो स्वयं को संयमित कर चित्रलेखा का प्रेम जीत सकता था किन्तु उसने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार छल का रास्ता चुना, बीजगुप्त और यशोधरा के विवाह का प्रश्न चित्रलेखा के बीजगुप्त को छोड़ने की बाध्यता नहीं अपितु उसे छोड़ने का बहाना था। यह भी बाध्यकारी कार्य न होकर अपनी इच्छानुसार लिया गया निर्णय था।

इस सम्पूर्ण विश्लेषण से यह तो स्पष्ट है कि वर्मा जी ने उपसंहार में जो पाप, पुण्य और परिस्थितियों सम्बन्धी अपने विचार प्रकट किये हैं उन विचारों या सिद्धांतों को उपन्यास के पात्रों या कथानक से पुष्ट नहीं किया जा सकता। विशालदेव का अंत में यह कहना "योगी कुमारगिरि अजित हैं उन्होंने ममत्व को वशीभूत कर लिया है। वे संसार से बहुत ऊपर उठ चुके है। और बीजगुप्त वासना का दास है। उसका जीवन संसार के घृणित भोग–विलास में है।"[18] कथानक को एकदम उलट देता है अब तक पात्र अपनी स्वतंत्र गति से चले थे और चलते चलते वर्मा जी के सिद्धांत से दूर जा पहुंचे थे तभी उपसंहार में वर्मा जी अपना मत रखने और उसे सिद्ध करने के लिए विशालदेव से जबरदस्ती अपने पक्ष में बात कहलवाते हैं।

अंत में यही निष्कर्ष निकलता है कि वास्तविक प्रेम भक्ति, विस्मरण या आकर्षण न होकर दो आत्माओं का सहचर्य है। मनुष्य परिस्थितियों से प्रभावित होने पर भी वो नहीं करता जो उसे करना पड़ता है अपितु मनुष्य वो करता है जो वह होता है।पाप के सम्बन्ध में वर्मा जी बिलकुल सत्य कहते हैं पाप की परिभाषा न हो सकी है और न हो सकेगी। और यही कथन पुण्य के सम्बन्ध में भी इतना ही सटीक है।

सन्दर्भ सूची

1. वर्मा, भगवतीचरण. 2025. चित्रलेखा. राजकमल पेपरबैक्स. पृष्ठ संख्या 199
2. पूर्ववत् पृष्ठ संख्या 95
3. पूर्ववत् पृष्ठ संख्या 96
4. पूर्ववत् पृष्ठ संख्या 14
5. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 96
6. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 143
7. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 96
8. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 197
9. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 77
10. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 104
11. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 89
12. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 90
13. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 49
14. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 52
15. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 145
16. शुक्ल, रामचंद्र. 2023. हिंदी साहित्य का इतिहास. लोक भारती प्रकाशन. पृष्ठ संख्या 410
17. वर्मा, भगवतीचरण. 2025. चित्रलेखा. राजकमल पेपरबैक्स. पृष्ठ संख्या 187
18. पूर्ववत् । पृष्ठ संख्या 199